Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 13 ~ Issue 11 (November 2025) pp: 275-281
ISSN(Online):2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

चार्वाक दर्शन और आधुनिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र : एक दार्शनिक अध्ययन

Deep Narayan Kumar[1], Prof (Dr.) Rajeev Kumar[2]
[1]Research Scholar, Department of Philosophy
Babasaheb Bhimrao Ambedkar Bihar University Muzaffarpur, Bihar 842001
[2]University Department of Philosophy
B R Ambedkar Bihar University Muzaffarpur, Bihar

सार

वर्तमान वैश्विक और उपभोक्तावादी युग में व्यवसायिक गतिविधियाँ केवल लाभ अर्जन तक सीमित नहीं रह गई हैं, बल्कि उनसे सामाजिक उत्तरदायित्व, पर्यावरणीय संरक्षण तथा नैतिक आचरण की भी अपेक्षा की जाती है। इस संदर्भ में "अर्थ" और "नैतिकता" के मध्य संतुलन स्थापित करना आधुनिक समाज और व्यवसाय के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती बन गया है। भारतीय दर्शन में अर्थ को पुरुषार्थ चतुष्टय का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है, किंतु इसे धर्म और नैतिक मूल्यों से पृथक नहीं देखा गया। प्रस्तुत अध्ययन में चार्वाक दर्शन, न्याय–वैशेषिक दर्शन तथा आधुनिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र के आधार पर अर्थ और नैतिकता के संबंध का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में यह स्पष्ट हुआ कि चार्वाक दर्शन भौतिक सुख और तात्कालिक लाभ को सर्वोच्च स्थान देता है, जो आधुनिक उपभोक्तावादी और लाभ-केंद्रित व्यवसायिक व्यवस्था से काफी हद तक मेल खाता है। यह दृष्टिकोण आर्थिक विकास और उपभोग को प्रोत्साहित करता है, किंतु नैतिकता की उपेक्षा के कारण सामाजिक असंतुलन, पर्यावरणीय संकट तथा मानवीय शोषण जैसी समस्याओं को जन्म दे सकता है। इसके विपरीत, न्याय–वैशेषिक दर्शन तर्क, प्रमाण और परिणामों के आधार पर नैतिक निर्णय लेने पर बल देता है। यह दर्शन इस विचार को स्थापित करता है कि किसी भी आर्थिक गतिविधि का मूल्यांकन उसके सामाजिक और नैतिक प्रभावों के संदर्भ में किया जाना चाहिए। अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि आधुनिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र भारतीय दार्शनिक परंपराओं के मूल्यों के साथ गहरा संबंध रखता है। कॉर्पोरेट शासन, सामाजिक उत्तरदायित्व, सतत विकास तथा नैतिक नेतृत्व जैसी अवधारणाएँ इसी संतुलन को स्थापित करने के प्रयास हैं। अतः यह आवश्यक है कि आर्थिक प्रगति को नैतिक मूल्यों, सामाजिक न्याय और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व के साथ जोड़ा जाए, ताकि व्यवसाय केवल लाभ अर्जन का माध्यम न होकर मानव कल्याण और सतत विकास का साधन बन सके।

मुख्य शब्द: *अर्थ, नैतिकता, चार्वाक दर्शन, न्याय–वैशेषिक दर्शन, व्यवसायिक नीतिशास्त्र, सामाजिक उत्तरदायित्व, सतत विकास, कॉर्पोरेट शासन*

परिचय

आधुनिक युग में वैश्विक अर्थव्यवस्था, तकनीकी विकास, उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के प्रभावों ने व्यवसायिक गतिविधियों और निर्णय प्रक्रियाओं को अत्यंत जटिल बना दिया है। वर्तमान समय में व्यवसाय केवल लाभ अर्जन तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि उससे सामाजिक उत्तरदायित्व, पर्यावरणीय संरक्षण, नैतिक आचरण तथा मानवीय कल्याण की अपेक्षा भी की जाती है। इस परिप्रेक्ष्य में "अर्थ" और "नैतिकता" के मध्य संतुलन स्थापित करना एक महत्वपूर्ण बौद्धिक और व्यावहारिक चुनौती के रूप में उभरकर सामने आया है। भारतीय दर्शन में "अर्थ" को पुरुषार्थ चतुष्टय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है, जहाँ यह केवल धन-संपत्ति अर्जन तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक व्यवस्था,

कर्तव्यबोध और जीवन के समुचित संचालन का साधन भी है। दूसरी ओर, नैतिकता वह मूल्य-व्यवस्था है, जो व्यक्ति और संस्थान दोनों के आचरण को नियंत्रित करती है तथा सही और गलत के बीच अंतर स्थापित करती है, जिससे समाज में संतुलन और न्याय बना रहता है।

भारतीय दार्शनिक परंपरा में अर्थ और नैतिकता के संबंध को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझाया गया है। चार्वाक दर्शन, जिसे भौतिकवादी विचारधारा का प्रतिनिधि माना जाता है, अर्थ को मुख्यतः भौतिक सुख और इन्द्रिय-आनंद से जोड़ता है। चार्वाक के अनुसार प्रत्यक्ष अनुभव ही ज्ञान का एकमात्र साधन है और जीवन का उद्देश्य अधिकतम सुख की प्राप्ति है, चाहे इसके लिए सामाजिक या धार्मिक मान्यताओं की उपेक्षा ही क्यों न करनी पड़े। यह दृष्टिकोण आधुनिक उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों और लाभ-केंद्रित व्यवस्था से काफी हद तक मेल खाता है, जहाँ भौतिक समृद्धि और उपभोग को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है। किंतु इस विचारधारा में नैतिकता का स्थान अपेक्षाकृत कम हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप दीर्घकालिक सामाजिक और पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। जब अर्थ को केवल भौतिक सुख तक सीमित कर दिया जाता है, तब सामाजिक संतुलन, न्याय और सामूहिक कल्याण प्रभावित होते हैं।

इसके विपरीत, न्याय–वैशेषिक दर्शन एक तर्कसंगत और यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जिसमें ज्ञान, प्रमाण, तर्क और वस्तुओं के वैज्ञानिक विश्लेषण को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इस परंपरा के अनुसार सत्य और नैतिकता का निर्धारण प्रमाणों और तार्किक विचार के आधार पर किया जाना चाहिए। न्याय दर्शन प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द जैसे प्रमाणों को स्वीकार करता है, जो निर्णय प्रक्रिया को अधिक वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक बनाते हैं। वैशेषिक दर्शन में पदार्थ, गुण और कर्म के माध्यम से संसार की संरचना का विश्लेषण किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक क्रिया का एक परिणाम होता है और वह परिणाम नैतिकता से भी जुड़ा होता है। इस दृष्टिकोण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यवसायिक निर्णय केवल लाभ को ध्यान में रखकर नहीं, बल्कि उसके नैतिक परिणामों को भी ध्यान में रखकर लिए जाने चाहिए।

आधुनिक व्यवसायिक नीतिशास्त्र का उद्भव इसी आवश्यकता से हुआ है कि आर्थिक गतिविधियों को नैतिक मूल्यों के साथ संतुलित किया जाए। व्यवसायिक नीतिशास्त्र उन सिद्धांतों और मानकों का समूह है, जो यह निर्धारित करते हैं कि व्यवसाय को किस प्रकार संचालित किया जाना चाहिए ताकि वह न केवल लाभ अर्जित करे, बल्कि समाज और पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का भी निर्वहन कर सके। वर्तमान समय में कॉर्पोरेट शासन, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा पर्यावरणीय संरक्षण जैसे विचार इसी संतुलन को स्थापित करने के प्रयास हैं। अब यह समझ विकसित हो रही है कि यदि व्यवसाय केवल अल्पकालिक लाभ पर केंद्रित रहेगा, तो वह दीर्घकालिक स्थिरता प्राप्त नहीं कर पाएगा। इसलिए आवश्यक है कि आर्थिक विकास के साथ-साथ नैतिक मूल्यों का भी समुचित पालन किया जाए।

नैतिकता की अवधारणा

मानव जीवन के समुचित संचालन, सामाजिक संतुलन तथा न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना के लिए नैतिकता का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। नैतिकता वह मूल्य-व्यवस्था है, जो व्यक्ति के आचरण को नियंत्रित करती है और उसे यह समझने में सहायता प्रदान करती है कि कौन सा कार्य उचित है और कौन सा अनुचित। भारतीय चिंतन परंपरा में नैतिकता का संबंध केवल बाह्य आचरण से नहीं, बल्कि आंतरिक चेतना, आत्मानुशासन और कर्तव्यबोध से भी जोड़ा गया है। यहाँ नैतिकता का आधार "धर्म" है, जो व्यक्ति और समाज दोनों के कल्याण को सुनिश्चित करने वाला सिद्धांत है। धर्म के अंतर्गत सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, संयम और न्याय जैसे गुणों को प्रमुखता दी गई है, जो नैतिक जीवन के आधार स्तंभ माने जाते हैं। इस प्रकार, भारतीय दृष्टिकोण में नैतिकता केवल नियमों का पालन नहीं है, बल्कि एक ऐसी जीवन पद्धति है, जो व्यक्ति को आत्मिक और सामाजिक संतुलन की ओर अग्रसर करती है (राधाकृष्णन, 2008)।

नैतिकता की अवधारणा को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसके विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया जाए। सामान्यतः नैतिकता को दो प्रमुख स्तरों पर समझा जाता है—व्यक्तिगत नैतिकता और सामाजिक नैतिकता। व्यक्तिगत नैतिकता वह है, जो व्यक्ति के आंतरिक विचारों, भावनाओं और निर्णयों को नियंत्रित करती है, जबकि सामाजिक नैतिकता

समाज में स्थापित मानदंडों, परंपराओं और नियमों पर आधारित होती है। जब व्यक्ति अपने व्यक्तिगत आचरण को सामाजिक मानकों के अनुरूप ढालता है, तब एक संतुलित और समरस समाज की स्थापना संभव होती है। इसके अतिरिक्त, नैतिकता का एक महत्वपूर्ण आयाम कर्तव्य और अधिकार के बीच संतुलन स्थापित करना भी है, जहाँ व्यक्ति अपने अधिकारों के साथ-साथ अपने कर्तव्यों का भी निर्वहन करता है।

भारतीय दर्शन में नैतिकता की अवधारणा को विभिन्न दर्शनों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से व्याख्यायित किया है। उदाहरण के लिए, वेदांत दर्शन आत्मा की शुद्धि और आत्मज्ञान को नैतिकता का आधार मानता है, जबकि बौद्ध और जैन दर्शन अहिंसा, करुणा और संयम को नैतिक जीवन का मूल तत्व मानते हैं। इन सभी दृष्टिकोणों में एक समानता यह है कि नैतिकता को केवल बाह्य आचरण तक सीमित नहीं रखा गया है, बल्कि उसे व्यक्ति के आंतरिक विकास और आत्मिक उन्नति से भी जोड़ा गया है। इसके विपरीत, चार्वाक दर्शन नैतिकता को उतना महत्व नहीं देता, क्योंकि उसका मुख्य उद्देश्य भौतिक सुख की प्राप्ति है। इस कारण चार्वाक दृष्टिकोण में नैतिकता का स्थान अपेक्षाकृत कम हो जाता है, जिससे यह दृष्टिकोण आधुनिक उपभोक्तावादी प्रवृतियों के समान प्रतीत होता है, जहाँ व्यक्तिगत लाभ और सुख को प्राथमिकता दी जाती है (चट्टोपाध्याय, 1992)।

न्याय–वैशेषिक दर्शन नैतिकता को एक तर्कसंगत और प्रमाण-आधारित प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है। इस परंपरा के अनुसार किसी भी कार्य की नैतिकता का निर्धारण उसके परिणामों और उसके पीछे के तर्क के आधार पर किया जाना चाहिए। न्याय दर्शन में प्रमाणों—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द—के माध्यम से सत्य की खोज की जाती है, जो नैतिक निर्णयों को अधिक वस्तुनिष्ठ बनाता है। वैशेषिक दर्शन में कर्म और उसके परिणामों का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि प्रत्येक क्रिया का प्रभाव होता है, और इसलिए व्यक्ति को अपने कार्यों के नैतिक परिणामों के प्रति सजग रहना चाहिए। इस प्रकार, न्याय–वैशेषिक दर्शन नैतिकता को एक तार्किक और व्यवस्थित ढाँचे में प्रस्तुत करता है, जो आधुनिक निर्णय प्रक्रिया के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है (मतीलाल, 2002)।

अध्ययन के उद्देश्य

1. चार्वाक दर्शन और आधुनिक व्यवसाय का अध्ययन
2. आधुनिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र का अध्ययन

चार्वाक दर्शन और आधुनिक व्यवसाय

भारतीय दार्शनिक परंपरा में चार्वाक दर्शन एक अत्यंत विशिष्ट और विवादास्पद विचारधारा के रूप में स्थापित है, जिसे भौतिकवाद का प्रतिनिधि माना जाता है। यह दर्शन पारंपरिक आध्यात्मिक और धार्मिक मान्यताओं का विरोध करता है तथा प्रत्यक्ष अनुभव को ही ज्ञान का एकमात्र साधन स्वीकार करता है। चार्वाक के अनुसार जीवन का मुख्य उद्देश्य सुख की प्राप्ति है, और यह सुख मुख्यतः भौतिक संसाधनों तथा इन्द्रिय-आनंद के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण में "अर्थ" का महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है, क्योंकि भौतिक सुख की प्राप्ति के लिए धन और संसाधनों का होना आवश्यक है। इस प्रकार, चार्वाक दर्शन में अर्थ को जीवन का केंद्रीय तत्व माना गया है, जो व्यक्ति को वर्तमान में सुख का अनुभव कराने में सहायक होता है। चार्वाक का प्रसिद्ध कथन "ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत" यह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति को भविष्य की चिंता किए बिना वर्तमान में सुख का उपभोग करना चाहिए। यह विचारधारा उस मानसिकता को दर्शाती है, जिसमें दीर्घकालिक परिणामों की अपेक्षा तत्काल संतुष्टि को प्राथमिकता दी जाती है (चट्टोपाध्याय, 1992)।

यदि इस दृष्टिकोण को आधुनिक व्यवसायिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि चार्वाक दर्शन के अनेक तत्व आज की पूंजीवादी और उपभोक्तावादी व्यवस्था में परिलक्षित होते हैं। आधुनिक व्यवसाय का एक प्रमुख उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जन करना होता है, जिसके लिए उत्पादन, विपणन और उपभोग की प्रक्रियाओं को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि उपभोक्ता अधिक से अधिक वस्तुओं और सेवाओं का उपयोग करें। इस प्रक्रिया में उपभोक्ताओं की इच्छाओं और आवश्यकताओं को बढ़ावा दिया जाता है, जिससे बाजार का विस्तार होता है और व्यवसाय को अधिक लाभ प्राप्त होता

है। यह प्रवृत्ति चार्वाक दर्शन के उस सिद्धांत से मेल खाती है, जिसमें भौतिक सुख को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। आज के समय में विज्ञापन, ब्रांडिंग और उपभोक्ता संस्कृति इसी मानसिकता को प्रोत्साहित करते हैं, जहाँ व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं से अधिक उपभोग करने के लिए प्रेरित होता है (अमर्त्य सेन, 2009)।

चार्वाक दर्शन और आधुनिक व्यवसाय के बीच एक अन्य महत्वपूर्ण समानता यह है कि दोनों में तात्कालिक लाभ को प्राथमिकता दी जाती है। अनेक व्यवसायिक संस्थाएँ अल्पकालिक लाभ के लिए ऐसे निर्णय लेती हैं, जो दीर्घकाल में हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, उत्पादन लागत को कम करने के लिए पर्यावरणीय नियमों की अनदेखी करना, सस्ते श्रम का शोषण करना, या निम्न गुणवत्ता वाले उत्पादों का निर्माण करना ऐसे कार्य हैं, जो तत्काल लाभ प्रदान करते हैं, किंतु दीर्घकाल में सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। यह प्रवृत्ति चार्वाक के उस दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करती है, जिसमें भविष्य की अपेक्षा वर्तमान सुख को अधिक महत्व दिया जाता है।

हालाँकि, यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि चार्वाक दर्शन में नैतिकता का स्थान अपेक्षाकृत सीमित है, जिससे यह दृष्टिकोण आधुनिक व्यवसायिक नैतिकता के संदर्भ में आलोचना का विषय बनता है। यदि व्यवसाय केवल लाभ अर्जन पर केंद्रित रहेगा और नैतिक मूल्यों की उपेक्षा करेगा, तो इससे समाज में असंतुलन और अन्याय की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए, पर्यावरणीय प्रदूषण, वित्तीय अनियमितताएँ और श्रमिकों का शोषण यह दर्शाते हैं कि जब नैतिकता को नजरअंदाज किया जाता है, तो उसका प्रभाव व्यापक रूप से समाज पर पड़ता है। इस संदर्भ में यह स्पष्ट होता है कि चार्वाक का भौतिकवादी दृष्टिकोण आधुनिक व्यवसाय के लिए प्रेरणादायक तो हो सकता है, किंतु इसे बिना नैतिक नियंत्रण के अपनाना हानिकारक सिद्ध हो सकता है (राधाकृष्णन, 2008)।

न्याय–वैशेषिक दर्शन और नैतिक निर्णय

भारतीय दर्शन की समृद्ध परंपरा में न्याय–वैशेषिक दर्शन एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है, विशेषकर ज्ञान, तर्क और यथार्थ के आधार पर निर्णय लेने की प्रक्रिया को समझने के संदर्भ में। यह दर्शन केवल सैद्धांतिक चिंतन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन के व्यावहारिक पक्षों, विशेषकर नैतिक निर्णयों के निर्धारण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। न्याय दर्शन का मुख्य उद्देश्य सत्य की प्राप्ति है, और इसके लिए यह प्रमाणों तथा तर्क का सहारा लेता है। वैशेषिक दर्शन इस प्रक्रिया को और अधिक सुदृढ़ करता है, क्योंकि यह संसार के तत्वों—पदार्थ, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय—का विश्लेषण करता है। इन दोनों दर्शनों का समन्वय एक ऐसी ज्ञान प्रणाली प्रस्तुत करता है, जो न केवल वस्तुनिष्ठता पर आधारित है, बल्कि नैतिक निर्णयों को भी तार्किक और प्रमाणित आधार प्रदान करता है (राधाकृष्णन, 2008)।

न्याय दर्शन के अनुसार किसी भी ज्ञान या निर्णय की वैधता उसके प्रमाणों पर निर्भर करती है। यह चार प्रमुख प्रमाणों—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द—को स्वीकार करता है। प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से प्राप्त ज्ञान को सबसे प्राथमिक माना गया है, जबकि अनुमान के माध्यम से तर्कसंगत निष्कर्ष निकाले जाते हैं। उपमान और शब्द के माध्यम से भी ज्ञान की प्राप्ति संभव है, जो व्यक्ति को व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। इस प्रकार, न्याय दर्शन यह स्पष्ट करता है कि नैतिक निर्णय केवल भावनाओं या व्यक्तिगत हितों के आधार पर नहीं लिए जाने चाहिए, बल्कि उन्हें प्रमाण और तर्क के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण आधुनिक संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है, जहाँ जटिल परिस्थितियों में संतुलित और न्यायसंगत निर्णय लेने की आवश्यकता होती है (मतीलाल, 2002)।

वैशेषिक दर्शन इस प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण योगदान देता है, क्योंकि यह संसार की संरचना और उसमें उपस्थित तत्वों का विश्लेषण करता है। वैशेषिक के अनुसार प्रत्येक वस्तु और क्रिया का एक निश्चित स्वरूप और प्रभाव होता है, जिसे समझकर ही उचित निर्णय लिया जा सकता है। पदार्थों के गुण और उनके परस्पर संबंधों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि किसी भी क्रिया का परिणाम केवल तत्काल नहीं होता, बल्कि उसका दीर्घकालिक प्रभाव भी होता है। इस प्रकार, वैशेषिक दर्शन नैतिक निर्णयों में दूरदृष्टि और उत्तरदायित्व की भावना को प्रोत्साहित करता है। यह व्यक्ति को यह समझने में सहायता करता है कि उसके कार्यों का प्रभाव केवल उस पर ही नहीं, बल्कि समाज और पर्यावरण पर भी पड़ता है।

आधुनिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र

आधुनिक युग में व्यवसायिक गतिविधियों का स्वरूप अत्यंत विस्तृत, जटिल और बहुआयामी हो गया है, जिसके कारण उनके संचालन में नैतिकता की भूमिका पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। आज व्यवसाय केवल वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन तथा वितरण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज, पर्यावरण और वैश्विक व्यवस्था के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। इस बदलते परिदृश्य में "आधुनिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र" एक ऐसे अनुशासन के रूप में उभरा है, जो यह निर्धारित करता है कि व्यवसायिक संस्थाएँ किस प्रकार अपने कार्यों को इस प्रकार संचालित करें कि वे न केवल आर्थिक लाभ अर्जित करें, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक मूल्यों का भी पालन करें। इस संदर्भ में यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यवसायिक नीतिशास्त्र केवल एक सैद्धांतिक अवधारणा नहीं है, बल्कि यह व्यवहारिक आवश्यकता है, जो किसी भी संस्था के दीर्घकालिक अस्तित्व और सफलता के लिए अनिवार्य है (राधाकृष्णन, 2008)।

आधुनिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र का मूल उद्देश्य व्यवसाय और समाज के बीच संतुलन स्थापित करना है। यह इस विचार पर आधारित है कि व्यवसाय केवल निजी लाभ का साधन नहीं है, बल्कि यह समाज का एक अभिन्न अंग है, जिसे समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करना चाहिए। इस दृष्टिकोण में पारदर्शिता, ईमानदारी, उत्तरदायित्व और न्याय जैसे नैतिक मूल्यों को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। जब कोई संस्था इन मूल्यों का पालन करती है, तो वह न केवल अपने हितधारकों का विश्वास अर्जित करती है, बल्कि समाज में अपनी सकारात्मक छवि भी स्थापित करती है। इसके विपरीत, यदि कोई संस्था अनैतिक व्यवहार अपनाती है, तो उसे कानूनी दंड, सामाजिक विरोध और प्रतिष्ठा की हानि का सामना करना पड़ सकता है। इस प्रकार, नैतिकता व्यवसाय की स्थिरता और विश्वसनीयता का आधार बन जाती है।

आधुनिक व्यवसायिक नीतिशास्त्र के विकास में कई कारकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिनमें औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और प्रतिस्पर्धा का बढ़ता स्तर प्रमुख हैं। इन परिवर्तनों के कारण व्यवसायिक गतिविधियों का विस्तार हुआ है और उनके प्रभाव का दायरा भी बढ़ा है। परिणामस्वरूप, यह आवश्यक हो गया है कि व्यवसाय अपने कार्यों के सामाजिक और पर्यावरणीय प्रभावों को ध्यान में रखें। इसी कारण "सामाजिक उत्तरदायित्व" की अवधारणा का विकास हुआ, जिसके अंतर्गत व्यवसायिक संस्थाएँ समाज के कल्याण के लिए विभिन्न कार्य करती हैं, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण और सामुदायिक विकास। यह दृष्टिकोण यह दर्शाता है कि व्यवसाय केवल लाभ कमाने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह समाज के विकास में भी योगदान दे सकता है (अमर्त्य सेन, 2009)।

आधुनिक संदर्भ में व्यवसायिक नीतिशास्त्र का एक महत्वपूर्ण पहलू "सतत विकास" की अवधारणा है, जो आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय और पर्यावरणीय संतुलन के बीच समन्वय स्थापित करने पर बल देती है। यह विचार इस सिद्धांत पर आधारित है कि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को इस प्रकार पूरा किया जाए कि भविष्य की पीढ़ियाँ अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम रहें। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत व्यवसायिक संस्थाओं को यह सुनिश्चित करना होता है कि उनके कार्यों से प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन न हो और पर्यावरण को न्यूनतम क्षति पहुँचे। इस प्रकार, सतत विकास आधुनिक व्यवसायिक नीतिशास्त्र का एक महत्वपूर्ण आधार बन गया है, जो आर्थिक प्रगति को नैतिकता और पर्यावरणीय जिम्मेदारी के साथ जोड़ता है।

आधुनिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र में "कॉर्पोरेट शासन" की अवधारणा भी अत्यंत महत्वपूर्ण है, जो यह सुनिश्चित करती है कि संस्थाएँ पारदर्शी और उत्तरदायी तरीके से संचालित हों। इसके अंतर्गत निर्णय प्रक्रिया, वित्तीय प्रबंधन, और प्रशासनिक कार्यों में स्पष्टता और ईमानदारी बनाए रखना आवश्यक होता है। जब कोई संस्था प्रभावी शासन प्रणाली अपनाती है, तो वह अपने हितधारकों के हितों की रक्षा करने में सक्षम होती है और अनैतिक गतिविधियों को नियंत्रित कर सकती है। इस प्रकार, कॉर्पोरेट शासन व्यवसायिक नीतिशास्त्र को व्यवहारिक रूप देने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

इसके साथ ही, आधुनिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र में नेतृत्व की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। नैतिक नेतृत्व वह है, जो अपने कार्यों और निर्णयों में नैतिक मूल्यों का पालन करता है और दूसरों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है। जब किसी संस्था का नेतृत्व नैतिक होता है, तो वह अपने कर्मचारियों को भी नैतिक आचरण के लिए प्रेरित करता है, जिससे

संगठन में एक सकारात्मक और उत्तरदायी वातावरण का निर्माण होता है। इसके विपरीत, यदि नेतृत्व अनैतिक होता है, तो यह पूरे संगठन को प्रभावित करता है और अनैतिक व्यवहार को बढ़ावा देता है। इस प्रकार, नेतृत्व की गुणवत्ता व्यवसायिक नीतिशास्त्र के प्रभावी क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

अर्थ और नैतिकता का संघर्ष

आधुनिक व्यवसायिक और सामाजिक जीवन में "अर्थ" और "नैतिकता" के मध्य संघर्ष एक अत्यंत महत्वपूर्ण और जटिल समस्या के रूप में उभरकर सामने आया है। जहाँ एक ओर अर्थ का संबंध धन, संसाधनों और आर्थिक विकास से है, वहीं दूसरी ओर नैतिकता का संबंध मूल्यों, कर्तव्यबोध और न्याय से है। जब व्यक्ति या संस्था आर्थिक लाभ को प्राथमिकता देती है और नैतिक मूल्यों की उपेक्षा करती है, तब यह संघर्ष स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। भारतीय दर्शन में इस द्वंद्व को समझने के लिए "धर्म" और "अर्थ" के संतुलन पर बल दिया गया है, किंतु आधुनिक संदर्भ में यह संतुलन अक्सर बिगड़ जाता है। तीव्र प्रतिस्पर्धा, वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद की प्रवृत्ति ने इस संघर्ष को और अधिक तीव्र बना दिया है, जिससे व्यवसायिक निर्णयों में नैतिकता का स्थान कई बार गौण हो जाता है (राधाकृष्णन, 2008)।

अर्थ और नैतिकता के संघर्ष का सबसे प्रमुख रूप लाभ अर्जन और सामाजिक उत्तरदायित्व के बीच दिखाई देता है। अनेक व्यवसायिक संस्थाएँ अधिकतम लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से ऐसे निर्णय लेती हैं, जो नैतिक दृष्टि से उचित नहीं होते। उदाहरण के लिए, उत्पादन लागत को कम करने के लिए निम्न गुणवत्ता वाले कच्चे माल का उपयोग करना, श्रमिकों को उचित वेतन न देना, या पर्यावरणीय नियमों की अनदेखी करना ऐसे कार्य हैं, जो अल्पकालिक लाभ तो प्रदान करते हैं, किंतु दीर्घकाल में समाज और पर्यावरण के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार के निर्णय यह दर्शाते हैं कि जब अर्थ को नैतिकता से अलग कर दिया जाता है, तो उसका प्रभाव व्यापक रूप से समाज पर पड़ता है (अमर्त्य सेन, 2009)।

चार्वाक दर्शन के संदर्भ में यह संघर्ष और अधिक स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि यह दर्शन भौतिक सुख और तात्कालिक लाभ को प्राथमिकता देता है। यदि इस दृष्टिकोण को बिना किसी नैतिक नियंत्रण के अपनाया जाए, तो यह व्यक्ति और संस्था दोनों को केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति की ओर प्रेरित कर सकता है। आधुनिक उपभोक्तावादी समाज में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जहाँ व्यक्ति अधिक से अधिक संसाधनों का उपभोग करना चाहता है, चाहे इसके लिए उसे सामाजिक या पर्यावरणीय नियमों की अवहेलना ही क्यों न करनी पड़े। इस प्रकार, चार्वाक दृष्टिकोण अर्थ और नैतिकता के संघर्ष को एक चरम रूप में प्रस्तुत करता है, जहाँ नैतिकता का स्थान लगभग समाप्त हो जाता है (चट्टोपाध्याय, 1992)।

इसके विपरीत, न्याय–वैशेषिक दर्शन इस संघर्ष को संतुलित करने का प्रयास करता है, क्योंकि यह तर्क, प्रमाण और परिणामों के आधार पर निर्णय लेने की प्रेरणा देता है। इस दृष्टिकोण में यह आवश्यक है कि किसी भी कार्य के नैतिक और सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण किया जाए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वह कार्य केवल आर्थिक लाभ के लिए नहीं, बल्कि व्यापक कल्याण के लिए भी उचित है। उदाहरण के लिए, यदि कोई संस्था अपने उत्पादों के निर्माण में पर्यावरणीय मानकों का पालन करती है, तो भले ही उसकी लागत अधिक हो, किंतु यह निर्णय नैतिक दृष्टि से उचित होगा और दीर्घकाल में संस्था की प्रतिष्ठा और स्थिरता को बढ़ाएगा। इस प्रकार, न्याय–वैशेषिक दर्शन अर्थ और नैतिकता के बीच संतुलन स्थापित करने में सहायक होता है (मतीलाल, 2002)।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन में "अर्थ" और "नैतिकता" को परस्पर विरोधी न मानकर एक-दूसरे के पूरक तत्वों के रूप में देखा गया है। अर्थ मानव जीवन और सामाजिक व्यवस्था के संचालन के लिए आवश्यक है, किंतु यदि उसे नैतिक मूल्यों से पृथक कर दिया जाए, तो वह शोषण, असंतुलन और अन्याय का कारण बन सकता है। आधुनिक व्यवसायिक जीवन में यही स्थिति व्यापक रूप से दिखाई देती है, जहाँ तीव्र प्रतिस्पर्धा और अधिकतम लाभ अर्जन की प्रवृत्ति कई बार नैतिक मूल्यों को पीछे छोड़ देती है। परिणामस्वरूप पर्यावरणीय संकट, श्रमिक शोषण, वित्तीय अनियमितताएँ तथा सामाजिक असमानताएँ जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। चार्वाक दर्शन का विश्लेषण यह दर्शाता है कि भौतिक सुख और

उपभोग पर आधारित दृष्टिकोण आधुनिक उपभोक्तावादी व्यवस्था से काफी समानता रखता है। कॉर्पोरेट शासन, सामाजिक उत्तरदायित्व, नैतिक नेतृत्व तथा सतत विकास जैसी अवधारणाएँ यह दर्शाती हैं कि व्यवसाय अब केवल लाभ अर्जन का माध्यम नहीं रह गया है, बल्कि वह समाज और मानवता के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। नैतिकता के बिना आर्थिक विकास स्थायी नहीं हो सकता, जबकि नैतिक मूल्यों के साथ जुड़ा आर्थिक विकास दीर्घकालिक स्थिरता और सामाजिक समरसता को सुनिश्चित करता है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय दार्शनिक परंपराएँ आधुनिक व्यवसायिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। चार्वाक दर्शन आर्थिक सक्रियता और भौतिक विकास की प्रेरणा देता है, जबकि न्याय–वैशेषिक दर्शन उसे नैतिक दिशा प्रदान करता है। इन दोनों दृष्टिकोणों के संतुलित समन्वय के माध्यम से ही ऐसा व्यवसायिक मॉडल विकसित किया जा सकता है, जो आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ सामाजिक न्याय, नैतिकता और सतत विकास को भी सुनिश्चित कर सके।

सन्दर्भ

[1.] राधाकृष्णन, एस. (2008)। भारतीय दर्शन। नई दिल्ली: राजपाल एंड संस।

[2.] चट्टोपाध्याय, डी. (1992)। लोकायत: भारतीय भौतिकवाद का अध्ययन। नई: दिल्ली पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस।

[3.] मतीलाल, बी. के. (2002)। भारतीय दर्शन में तर्क और संगीत। दिल्ली: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

[4.] सेन, अमर्त्य. (2009)। न्याय का विचार. कैम्ब्रिज: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

[5.] शर्मा, चंद्रधर. (2011). भारतीय दर्शन: आलोचन और अनुशीलन। दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।

[6.] गांधी, एम. के. (2007)। सत्य का अर्थ। पाइफ़िन: नवजीवन प्रकाशन।

[7.] त्रिपाठी, आर.डी. (2015)। व्यावसायिक नैतिकता और कॉर्पोरेट प्रशासन. नई दिल्ली: हिमालय पब्लिशिंग हाउस।

[8.] वेलास्केज़, एम.जी. (2012)। व्यावसायिक नैतिकता: अवधारणाएँ और मामले। नई दिल्ली: पियर्सन एजुकेशन।

[9.] दासगुप्ता, एस.एन. (2005)। भारतीय दर्शन का इतिहास. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.

[10.] नकवी, एस.एन.एच. (2003)। नैतिकता और मानव कल्याण पर परिप्रेक्ष्य। लंदन: केगन पॉल इंटरनेशनल.